ई-वेस्ट कानूनों से कुछ बदलेगा क्या?

रवि अग्रवाल

ई-वेस्ट (इलेक्ट्रॉनिक कचरा) को लेकर सरकार द्वारा अधिसूचित नए नियम एक महत्वपूर्ण कदम है हालांकि इसमें अब भी कुछ खामियां हैं। निर्माताओं और उत्पादकों के लिए बच निकलने की कुछ गलियां छोड़ दी गई हैं। इनफॉर्मल क्षेत्र के लिए भी पर्यावरणीय और स्वास्थ्य सम्बंधी नियंत्रणों से बचने के रास्ते हैं। इनका समाधान करने की ज़रूरत है। इसके अलावा जागरुकता पैदा करना और आम उपभोक्ताओं के लिए ई-वेस्ट के निस्तारण को आसान बनाना भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है। नीति ऐसी होनी चाहिए जो ई-वेस्ट के निस्तारण के लिए जवाबदेह लोगों के बीच सहयोग बढ़ाए, न कि प्रतिस्पर्धा।

केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा अधिसूचित ई-वेस्ट सम्बंधी नियम इसी साल 1 मई 2012 से देश भर में लागू हो गए हैं। इसमें देश में इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के तमाम उपभोक्ताओं, निर्माताओं, आयातकों और व्यापारियों के लिए ई-वेस्ट का निस्तारण अनिवार्य बनाया गया है (केवल सूक्ष्म एवं लघु उद्योग क्षेत्र को छोड़कर)। इसके साथ ही भारत इस तरह के नियमों को लागू करने वाले चुनिंदा विकासशील देशों में शामिल हो गया है। इन नियमों का मकसद देश भर में हर साल निकलने वाले आठ लाख टन से भी ज़्यादा ज़हरीले लेकिन कीमती ई-कचरे का निस्तारण करना है। आने वाले दशक में यह मात्रा बढ़कर दुगनी होने की संभावना है। अभी देश में 95 फीसदी ई-वेस्ट का रिसाइकलिंग लघु और इनफॉर्मल क्षेत्र द्वारा बिखरे रूप में और विविध प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है जिसका गंभीर असर पर्यावरण एवं स्वास्थ्य पर पड़ता है। ऐसे में इस व्यवस्था को कहीं अधिक सुरक्षित और जवाबदेह बनाना एक बड़ा काम होगा।

ये नियम ई-वेस्ट के मुद्दे पर केन्द्रित एक रिपोर्ट (टॉक्सिक्स लिंक 2003) के आने के आठ साल बाद अधिसूचित किए गए हैं। ये कई मामलों में नई ज़मीन तोड़ते प्रतीत होते हैं, लेकिन इनमें कई खामियां भी हैं। इसमें एक्सटेंडेड प्रोड्यूसर रिस्पांसिबिलिटी (ईपीआर) और रिमूवल ऑफ हेज़ार्डस सब्सटेंसेस (आरएचएस) जैसे प्रावधान किए गए हैं। इससे ई-वेस्ट के निस्तारण की ज़िम्मेदारी निर्माताओं पर डाली गई है। अर्थात ई-वेस्ट को केवल नगर निगम की समस्या न मानते हुए उत्पाद के जीवन-चक्र का हिस्सा माना गया है। इसमें कई अहम मुद्दे छोड़ दिए गए हैंः जैसे इनफॉर्मल क्षेत्र को इसके दायरे में लाना, ई-वेस्ट का आयात, पारे वाले लैंपों का डिस्पोज़ल, संग्रहण के लक्ष्यों का निर्धारण वगैरह।

जबसे ये नियम अस्तित्व में आए हैं, इनके क्रियान्वयन में खामियां नज़र आ रही हैं। इन नियमों को मई 2011 में ही अधिसूचित कर दिया गया था, ताकि इसमें शामिल स्टेकहोल्डर्स को तैयारी के लिए एक साल का समय मिल सके। एक साल की ग्रेस अवधि के बावजूद इस दिशा में कुछ खास नहीं किया जा सका; खासकर प्रमुख स्टेकहोल्डर यानी निर्माताओं ने कोई प्रगति नहीं की। दरअसल, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा नियमों की व्याख्या में मदद के उद्देश्य

से तैयार किए जा रहे नए दिशानिर्देश इस मसले पर उद्योगों की जवाबदेही को कम करने की एक कोशिश प्रतीत होते हैं।

ई-वेस्ट और ज़हर

ई-वेस्ट शब्दावली का इस्तेमाल इलेक्ट्रॉनिक और इलेक्ट्रिकल उपकरणों की अवधि समाप्त होने के बाद बचे अनुपयोगी पदार्थों के लिए किया जाता है। कई देशों में इसकी परिभाषा में विभिन्न उपभोक्ता सामग्री को शामिल किया गया है। भारत में अधिकांश ई-वेस्ट कंप्यूटर, मोबाइल फोन और सम्बंधित उपकरणों से आता है। इसके अलावा टेलीविज़न सेट, वॉशिंग मशीन, फ्रिज और फ्लोरोसेंट लैंप (जिनमें पारा भी होता है) भी अनुपयोगी होने के बाद ई-वेस्ट ही माने जाते हैं।

इन इलेक्ट्रॉनिक और इलेक्ट्रिकल उपकरणों में तांबा, सोना, चांदी, प्लेटिनम, पैलेडियम, प्लास्टिक, कांच जैसे कीमती पदार्थ होते हैं। लेकिन इनके अलावा इनमें 50 से भी अधिक घातक ज़हरीले पदार्थ भी होते हैं। इनसे तंत्रिका सम्बंधी और अंतःस्रावी (हारमोन सम्बंधी) विकृतियों या कैंसर समेत कई दीर्घकालीन और यहां तक कि पीढ़ियों तक चलने वाली घातक बीमारियां हो सकती हैं। इन ज़हरीले पदार्थों में पारा, आर्सेनिक, सीसा, क्रोमियम, ब्रोमिनेटेड फ्लेम रिटार्डेंट्स, पीसीबी और ओज़ोन की परत को नुकसान पहुंचाने वाला सीएफसी इत्यादि रहते हैं। पीवीसी कोटेड तांबे के तारों जैसे कुछ ई-वेस्ट को जलाने से डायऑक्सिन और फ्यूरान्स जैसी बेहद ज़हरीली गैसें निकलती हैं। इनमें से कई पदार्थों को तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिबंधित भी किया जा चुका है।

ई-वेस्ट के निस्तारण की प्रक्रियाओं में ज़हरीले पदार्थों से संपर्क बहुत ज़्यादा होता है, खासकर इनफॉर्मल क्षेत्र में जहां बहुत ही सस्ती दरों पर महिला-पुरुषों और बच्चों को काम पर रखा जाता है और पर्यावरण सम्बंधी किसी भी मानदंड का पालन नहीं किया जाता, जबकि लाभ ई-वेस्ट के दाम की तुलना में 150 फीसदी तक होता है। श्रमिकों पर इसका असर काफी ज़्यादा होता है, क्योंकि वे तांबे के सर्किट बोर्ड से तांबा निकालने के लिए बहुत ही तेज़ एसिड और माइक्रोप्रोसेसर्स से सोना निकालने के लिए पारे का इस्तेमाल करते हैं। इसी तरह तारों में से एल्यूमिनियम और तांबा निकालने के लिए पीवीसी कोटिंग को जलाते हैं।

ई-वेस्ट में ऐसे भी उत्पाद होते हैं जिनमें बहुत ज़्यादा खतरा होने के साथ-साथ कीमती पदार्थ भी होते हैं, जैसे कंप्यूटर्स, मोबाइल फोन, टीवी सेट्स इत्यादि। इसी तरह ऐसे भी उत्पाद होते हैं जो घातक तो होते हैं, लेकिन उनमें मिलता कुछ नहीं, जैसे फ्रिज (सीएफसी गैस होती है), पारे वाले लैंप इत्यादि। रिसाइकलिंग उद्योग पहले किस्म के ई-वेस्ट में ज़्यादा रुचि लेता है, क्योंकि इसमें पैसा होता है। ज़रूरत दूसरी किस्म के ई-वेस्ट के लिए भी प्रोत्साहन और वित्तीय संसाधन जुटाने की है, ताकि सुरक्षित निस्तारण किया जा सके।

संग्रहण की सुविधा

कंप्यूटर्स, मोबाइल फोन और ऐसे ही अन्य उत्पादों की सप्लाई चेन वैश्विक होती है, जिनका नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में होता है। हालांकि जब भी ई-वेस्ट निस्तारण की बात होती है, तो वे विकासशील देशों में कोई सकारात्मक पहल करने से कतराते हैं। रिसाइकलिंग के कार्य में शहरी गरीबों के जुड़ाव, उत्पादों के लिए काले बाज़ार की व्यापक उपलब्धता, सस्ती मज़दूरी, श्रम और पर्यावरण सम्बंधी शिथिल कानून, उपभोक्ताओं में जागरूकता की कमी और कमज़ोर बुनियादी ढांचे के चलते विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में ई-वेस्ट के प्रबंधन में विभिन्न मुद्दों पर कहीं ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। खासकर पश्चिमी देशों के अनुभवों से हम काफी कुछ सीख सकते हैं, लेकिन स्थानीय ज़रूरतों के मुताबिक भी खास मॉडलों का विकास करना ज़रूरी है। जैसे युरोपीय देशों में लोग पुराने आइटमों के बदले एडवांस्ड रिसाइकलिंग फीस (एआरएफ) तक देने को तैयार रहते हैं जिसका असर लागत पर पड़ता है। इसके विपरीत, भारत में आम तौर पर उपभोक्ता उम्मीद करता है कि यदि वह कोई पुराना कंप्यूटर दे रहा है तो उसके बदले में उसे कुछ न कुछ पैसा ज़रूर मिलेगा।

इसलिए भारत में इस तरह की व्यवस्था को लागू करने के लिए नवाचारी, दीर्घकालीन, और सुविधाजनक एप्रोच की ज़रूरत है, लेकिन हमारी नियामक एजेंसियां ऐसा नहीं कर पा रहीं।

इन नियमों में शामिल महत्त्वपूर्ण प्रावधानों में अब निर्माताओं या उत्पादकों के लिए यह अनिवार्य किया गया है कि उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ई-वेस्ट संग्रहण की बुनियादी सुविधाएं (हर इलाके में संग्रहण पेटियां रखने सहित) स्थापित करना होगा, उनका वित्तीय इंतज़ाम करना होगा और उनका समुचित ऑपरेशन सुनिश्चित करना होगा। दरअसल, अब निर्माता ईपीआर कानून के अंतर्गत रजिस्ट्रेशन करवाए बगैर अपने उत्पाद नहीं बेच सकते।

इसका मकसद तो अच्छा है - उत्पादन लागत के एक हिस्से के तौर पर ई-वेस्ट प्रबंधन के बुनियादी ढांचे का विकास करना और वेस्ट से प्राप्त सामग्री का फिर से प्रोडक्शन चेन में इस्तेमाल करना। यह तो प्रत्यक्ष उद्देश्य है। परोक्ष मकसद यह भी है कि अधिक क्लीन और लंबे समय तक चलने वाले उत्पादों के लिए टिकाऊ डिज़ाइन बनाने का प्रोत्साहन मिले।

अनुभव की कमी और आधारभूत सूचनाओं की अनुपलब्धता के अलावा भी भारत में ईपीआर को लागू करने में कई दिक्कतें हैं। लेकिन सबसे पहली बाधा तो इस बात की समझ का अभाव है कि यह काम कैसे करेगा।

सहयोग या प्रतिस्पर्धा?

ईपीआर की सफलता की चाबी निर्माताओं के हाथों में ही है। रिसाइकलिंग चेन में कलेक्शन सेंटर्स, डिस्मेंटलर्स और रिसाइकल-कर्ता शामिल होते हैं। आम तौर पर ई-वेस्ट इसी ग्रीन चैनल से होकर गुज़रना चाहिए और जब उससे गुज़रे, उस दौरान ही उस पर नज़र रखनी चाहिए। वित्तीय और विधिक जवाबदेही भी उसके साथ ही चलती है। इसके स्थान पर अगर ई-वेस्ट का प्रवेश कई बिंदुओं पर होने लगे तो सिस्टम टूट जाता है।

दुर्भाग्य से भारत में प्रत्येक क्षेत्र को स्वतंत्र रूप से ई-वेस्ट संग्रहण करने की अनुमति दी गई है। इसी से विकृति पैदा हो रही है। उदाहरण के तौर पर बाज़ार से सीधे ई-वेस्ट संग्रहित करने वाले रिसाइकलर इनफॉर्मल सेक्टर को भी अपने साथ शामिल कर लेते हैं। उन्हें मिली अनुमति को वे ऐसा करने का लाइसेंस समझ लेते हैं। कई मामलों में तो वे रिसाइकल करने के लिए इनफॉर्मल सेक्टर को ही सब-कांट्रेक्ट दे देते हैं और इस तरह वे उस क्षेत्र पर निर्भर होकर रह जाते हैं। अब ऐसे में अगर निर्माता अपने उपभोक्ताओं से एआरएफ वसूलने लगे तो इस बात की निगरानी रखने की कोई व्यवस्था नहीं है कि उत्पाद को कब और किसके द्वारा रिसाइकल किया गया है।

ई-वेस्ट की रिसाइकलिंग में भारी मुनाफे की संभावना के मद्देनज़र 90 से भी अधिक रिसाइकलर्स ने सरकार से अनुमति ले ली है, लेकिन इस बात का कोई आकलन नहीं किया गया है कि कुल कितनी क्षमता की ज़रूरत है या फिर ई-वेस्ट का भौगोलिक बंटवारा कैसा है। यह भी तय नहीं हुआ है कि प्रस्तावित ईपीआर आधारित ग्रीन चैनल के साथ वे कैसे जुड़ेंगे। चूंकि प्रत्येक फेसिलिटी में करोड़ों रुपए के निवेश की ज़रूरत पड़ सकती है, इसलिए रिसाइकल-कर्ता ई-वेस्ट को हथियाने को प्रेरित होते हैं। लेकिन नए नियमों के लागू होने के बाद यह सब कुछ जल्दी बदल सकता है और निकट भविष्य में ई-वेस्ट की रिसाइकलिंग में लाभ संकुचित हो सकते हैं। जब ऐसा होगा तो एकीकृत ग्रीन चैनल का अभाव बुरी तरह अखरेगा।

इस तरह इनफॉर्मल और फॉर्मल दोनों ही क्षेत्र ईपीआर सिस्टम को अलग-अलग तरीकों से तोड़-मरोड़ रहे हैं - पहला, ई-वेस्ट को हथियाकर या मुख्य रिसाइकलर के सब-कांट्रेक्टर के रूप में कार्य करके और दूसरा, निर्माता से स्वतंत्र होकर कार्य करके। लिहाज़ा जो काम सहयोगी भावना से किया जाना चाहिए था, उसमें गलाकाट होड़ मची हुई है। इस होड़ के चलते निर्माताओं की जवाबदेही सुनिश्चित नहीं हो पा रही है और निर्माता भी इस स्थिति से संतुष्ट नज़र आते हैं। अभी तक नियमों के तहत कानूनी उत्तरदायित्व के निर्वहन की दिशा में किसी ने कोई कदम नहीं उठाया है।

नई प्रणाली में इनफॉर्मल सेक्टर को भी शामिल करके परस्पर सहयोगात्मक स्थिति निर्मित करना बेहद महत्त्वपूर्ण

है। दुर्भाग्य से लेड एसिड बैटरी नियमों (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय 2002) से भी कोई सबक नहीं सीखा गया है, जिसमें ईपीआर था तो ज़रूर, लेकिन बैटरियों को इनफॉर्मल सेक्टर के पिघलाने वाले लोगों (स्मेल्टर) से दूर करने में यह नियम विफल रहा। जिन लोगों की आजीविका दांव पर थी, उन्होंने अपनी रोज़ी-रोटी बचाने के लिए चतुर रास्ते निकाल लिए। नए नियमों में भी ऐसे कोई प्रावधान नहीं किए गए हैं कि इनफॉर्मल क्षेत्र भी इसमें भागीदारी कर सके। जो भी पहल की गई है, वह या तो कचरा बीनने वालों की सहकारी समितियों या गैर सरकारी संगठनों की ओर से अपने आप की गई है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो प्रोड्यूसर रिस्पांसिबिलिटी ऑर्गेनाइज़ेशंस (पीआरओ) या इंडिव्यूजल प्रोड्यूसर रिस्पांसिबिलिटी (आईपीआर) के ज़रिए सहकारिता प्रणाली स्थापित की गई है। इन पर सभी बड़े स्टेकहोल्डर्स का संयुक्त स्वामित्व होता है और वे ही ग्रीन चैनल के गठन के लिए ज़िम्मेदार होते हैं, जिसमें ई-वेस्ट का संग्रहण, उसका विखंडन, उचित रिसाइकलिंग और अंतिम रूप से निस्तारण शामिल होता है। इसके लिए वित्तीय प्रावधान इसके साझेदारों द्वारा एकत्र राशि और साथ ही उपभोक्ताओं द्वारा चुकाई गई फीस की राशि से किया जाता है। जो भी लाभ होता है, वह संगठन को और भी टिकाउ बनाने पर खर्च किया जाता है।

ई-वेस्ट का आयात

ई-वेस्ट का आयात, चाहे वह कानूनी हो या गैर कानूनी, ईपीआर सिस्टम के लिए नुकसानदायक है। गैर कानूनी रूप से आयातित ई-वेस्ट सीधे इनफॉर्मल सेक्टर में जाता है, जबकि कानूनी रूप से आयातित ई-वेस्ट की वजह से घरेलू ई-वेस्ट के संग्रहण के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है। ज़्यादातर ई-वेस्ट युरोपीय देशों, अमरीका, जापान आदि से विकासशील देशों में आता है। चूंकि इन देशों में ऐसे कचरे के निस्तारण पर बहुत अधिक खर्च आता है, इसलिए वे इसे भारत, चीन और अफ्रीकी देशों को निर्यात कर देते हैं, जहां श्रम सस्ता है और पर्यावरण मानदंड भी इतने सख्त नहीं हैं। उदाहरण के लिए अमरीका में एक कंप्यूटर के रिसाइकलिंग पर जहां 20 डॉलर खर्च करने पड़ते हैं, वहीं भारतीय व्यापारी को वह 15 डॉलर में बेचा जा सकता है। इस तरह 35 डॉलर की बचत की जा सकती है।

एक अनुमान के अनुसार भारत हर साल करीब 50 हज़ार टन ई-वेस्ट का आयात करता है और इसके व्यापारी इससे अच्छा-खासा मुनाफा कमा लेते हैं। टॉक्सिक्स लिंक ने ऐसे 40 परमिटों का पता लगाया जिनमें सामग्री 'मिक्स्ड मेटल स्क्रेप' के रूप में दर्ज थी। ऐसा ई-वेस्ट का अवैध आयात करने के मकसद से किया गया था। ई-वेस्ट घोषित नहीं करना, अंतर्राष्ट्रीय कानूनों से बचने के लिए गलत तरीके से यह दिखाना कि अमुक ई-वेस्ट युरोप या अमरीका से नहीं बल्कि पश्चिम एशिया से आयात किया गया है, इनफॉर्मल सेक्टर में ई-वेस्ट सामग्री की नीलामी लगाना आदि काम धड़ल्ले से होते हैं। ई-वेस्ट सेकंड हैंड माल या निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्र (ईपीज़ेड) में भी पहुंचता है।

इसे रोकने के प्रयास बहुत कम हुए हैं। नियमों के शुरुआती मसौदे में ई-वेस्ट के आयात पर प्रतिबंध प्रस्तावित था, लेकिन बाद में उसे हटा दिया गया। 2011 में एक रिसाइकलर को आठ हज़ार टन ई-वेस्ट का आयात करने की अनुमति भी दे दी गई। इस वजह से खतरा पैदा हो गया है कि भारत ई-वेस्ट का डंपिंग ग्राउंड बन जाएगा।

अन्य चुनौतियां

- **अनुमति मिलने की धीमी प्रक्रिया**: नियमों में कहा गया है कि उत्पादकों को सभी 27 राज्य प्रदूषण नियंत्रण मंडलों से अनुमति लेनी होगी। इसके अलावा कलेक्शन सेंटर्स, डिस्मेंटलर्स और रिसाइकलर्स को भी सभी राज्यों के मंडलों से अलग-अलग अनुमति लेने की ज़रूरत होगी। इसकी बजाय यह हो सकता था कि कम से कम उत्पादकों को केन्द्रीय स्तर पर अनुमति मिल जाती और अन्य को राज्य स्तर पर।
- **लक्ष्य निर्धारण**: निगरानी की प्रक्रिया और नियमों का पालन सुनिश्चित करने के लिए रिसाइकलिंग के लक्ष्य तय करना ज़रूरी है। युरोपीय देशों में प्रति व्यक्ति ई-वेस्ट संग्रहण का लक्ष्य निर्धारित है। लेकिन भारत में मूलभूत

आंकड़ों के अभाव का हवाला देते हुए संबद्ध उद्योग ने लक्ष्य निर्धारण का कड़ा विरोध किया। इस सम्बंध में व्यावहारिक लक्ष्य तय किए जा सकते हैं।

• **सूचना में पारदर्शिता**: रिसाइकलिंग प्रणाली के तहत जो भी राशि एकत्र की जा रही है, खासकर उपभोक्ताओं से, उसके इस्तेमाल को लेकर जवाबदेही और पारदर्शिता रखना ज़रूरी है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इस राशि का इस्तेमाल केवल और केवल रिसाइकलिंग में ही किया जाएगा। जब भी नए उत्पाद खरीदे जाएं, रिसाइकलिंग सम्बंधी सूचना उपभोक्ताओं को अवश्य मुहैया करवानी चाहिए।

• **उपभोक्ताओं की जागरुकता**: इस पूरी प्रणाली की सफलता इस बात पर टिकी है कि उपभोक्ताओं को ई-वेस्ट के खतरों और अधिकृत कलेक्शन सेंटर्स व रिसाइकलर्स को लेकर कितनी जानकारी दी जाती है। नियमों में यह दायित्व उत्पादकों के ज़िम्मे है, लेकिन इसके लिए सरकार और अन्य स्टेकहोल्डर्स को भी आगे आना होगा। इस कार्य के लिए उत्पादकों को एक विशेष फंड रखना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि जागरूकता बड़े शहरों तक ही सीमित न रह जाए। छोटे कस्बों व ग्रामीण इलाकों के उपभोक्ताओं को भी जोड़ना होगा। इस काम के लिए स्कूलों और कॉलेजों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

• **ई-वेस्ट का फिर इनफॉर्मल सेक्टर में पहुंचना**: प्रस्तावित मानव रहित संग्रहण पेटिकाएं, चलते-फिरते कलेक्शन सेंटर्स, बड़े उपभोक्ताओं द्वारा थोक नीलामी, काला बाज़ार के उत्पाद, अवैध आयात इत्यादि ऐसे कई रास्ते हैं, जिनके ज़रिए ई-वेस्ट इनफॉर्मल सेक्टर में पहुंच सकता है। ऐसी खामियों को पहचानकर उन पर लगाम लगाने की ज़रूरत है।

• **नियमन एवं निगरानी**: हमारे देश में पर्यावरण सम्बंधी तमाम कानूनों की सबसे बड़ी समस्या नियमन और निगरानी की है। इस मामले में ईपीआर को लागू करके क्रियांवयन की ज़िम्मेदारी निजी क्षेत्र के साथ साझा करने का प्रयास किया गया है। हालांकि पूरी प्रणाली कैसे कार्य करती है, इसके लिए कड़ी निगरानी की अहम भूमिका होगी।

• **अन्य मसले**: चूंकि प्रत्येक शहरी क्षेत्र में कलेक्शन पेटिकाएं रखने की ज़रूरत होगी, इसलिए नगर निगमों और नगर पालिकाओं की भूमिका को भी साफ तौर पर परिभाषित करने की ज़रूरत है। यह कार्य उनके सहयोग के बिना संभव नहीं है। इसके अलावा सिविल सोसाइटी, एनजीओ, कचरा बीनने वालों की सहकारी समितियों आदि को भी नियमों के प्रति जागरूक बनाना होगा।

एक अंतिम चुनौती यह भी है कि भविष्य के कंप्यूटर और मोबाइल फोन आदि पर्यावरण अनुकूल हों और उनमें ज़हरीले पदार्थों का इस्तेमाल न हों। इसके अलावा ऐसी डिज़ाइनों के विकास को प्रेरित करने की भी ज़रूरत है, जिससे उत्पाद टिकाऊ बनें और ई-वेस्ट कम से कम पैदा हो। युरोपीय देशों में ऐसे प्रावधान लागू हैं, जिनमें यह सुनिश्चित किया गया है कि केवल वही उत्पाद बाज़ार में आ सकते हैं, जो इन नियमों का पालन करते हैं। डिज़ाइन का यह मसला कहीं अधिक जटिल है और यह भी तय नहीं है कि इसमें कितनी सफलता मिलेगी, लेकिन यह ईपीआर का एक प्रमुख मकसद तो है ही।

उपसंहार

प्रस्तावित टेक-बैक ई-वेस्ट व्यवस्था की सफलता केवल नियमों पर ही नहीं, बल्कि कलेक्शन, डिस्मेंटलिंग और रिसाइकलिंग सिस्टम्स के परस्पर तालमेल व जुड़ाव पर भी निर्भर करेगी, जिसका मुख्य दायित्व उत्पादकों पर होगा। निगरानी और पारदर्शिता की भी अहम भूमिका होगी।

उपभोक्ताओं की जागरूकता के साथ-साथ ईपीआर व्यवस्था की समुचित समझ भी महत्त्वपूर्ण है। अन्यथा ये नियम भी फॉर्मल सेक्टर के ऑपरेटर्स जैसे ट्रेडर्स और रिसाइकलर्स के लिए ई-वेस्ट के नाम पर पैसा कमाने का ही विधिसम्मत माध्यम बन जाएंगे। ऐसा हुआ तो इससे न तो पर्यावरण सुधरेगा और न ही स्वास्थ्य सम्बंधी चिंताएं दूर हो सकेंगी। ***(स्रोत फीचर्स)***